E- ISSN 2582-5429
AMRJ
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
April-June 2022 Volume 3 Issue IV (B) SJIF Impact- 5.64

19

एक सफल प्रयोगधर्मी नाटककार : जगदीशचंद्र माथुर

डॉ.भानुदास आगेडकर
सह-प्राध्यापक एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग,किसन वीर महाविद्यालय,वाई

शोध-सारांश

हिंदी नाटक विधा का आरंभ और उसका विकास प्राचीन भारतीय नाटयशास्त्र के ही मान्यताओं पर विकसित हुआ है ऐसा माना जाता है किंतु स्वतंत्रता के प्रथम दशक के अंत तक आते-आते हिंदी नाटयशास्त्र में कार्यरत अधिकतर नाटककार यह जान चुके थे कि नाटयलेखन वास्तव में समकालीन सामाजिक विसंगतियों,राजनीतिक समस्याओं,साम्प्रदायिक संघर्ष के प्रतिक्रिया स्वरुप साकार करना है। उनकी यही प्रासंगिकता हिंदी नाटक को आधुनिकता की ओर उन्मुख करती है। एक तरह से इन नाटककारों ने अपने नए विचार तथा नए-नए प्रयोगों द्वारा अपने श्रेष्ठतम् नाटयरचनाओं के माध्यम से सम्पूर्ण युग को ही प्रभावित किया था। इस दृष्टि से देखे तो अपने युग को प्रभावित करनेवाले अनेक हिंदी नाटककारों में से एक है - जगदीशचंद्र माथुर। इन्होंने हिंदी नाट्यलेखन में नवीनता को प्रस्तुत करते हुए रंगमंचीय तथा उद्देश्यपरकता की दृष्टि से नए प्रयोग किए है। प्रस्तुत शोधालेख में माथुरजी की नाट्य प्रयोगधर्मिता को स्पष्ट किया है।

बीज-शब्द:- *हिंदी नाटक,नाटक,प्राचीन ,आधुनिक ,ऐतिहासिक ,समस्याएँ, संस्कृत,कोणार्क ,पहला राजा, शारदीया, दशरथनंदन,प्रयोगात्मक,स्वतंत्रता,नेहरु, विशु,रंगमंच,दृष्टि और सांस्कृतिकता आदि।*

प्रस्तावना

'नाटक' हिंदी साहित्य की अन्य गद्य विधाएँ जैसे उपन्यास,कहानी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण आदि की तुलना में अधिक श्रेष्ठ एवं अत्यंत प्रभावात्मक विधा है। प्राचीन संस्कृत आचार्य भरतमुनि का कथन 'काव्येषु नाटकं रम्यं' नाटक की उसी श्रेष्ठतमता का प्रमाण प्रतिपादित करता है। आधुनिककालीन साहित्यिक विद्वान भी नाटक विधा को समकालीन परिवेश का दस्तावेज मानते हैं । उनके अनुसार समकालीन जीवन की अभिव्यक्ति नाटक में अधिक वास्तविक तथा अत्यंत सजीवता से नाटककार द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। एक तरह से नाटक विधा में ही सम-सामयिक स्थितियों का एवं सामाजिक,धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं का वास्तविक दर्शन अत्यंत प्रामाणिकता से हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि हिंदी नाटक विधा को युगीन परिवेश का दस्तावेज कहा जाता है। हिंदी नाटक भारत की आजादी के बाद कलापक्ष एवं भावपक्ष की दृष्टि से परिवर्तित रूप में उभरकर सामने आया है। प्रस्तुत शोधालेख में शोध-कर्ता ने जगदीशचंद्र माथुर के माध्यम से नाटक के बदलते रूप को दर्शाने का प्रयास किया है।

जगदीशचंद माथुर: सामान्य परिचय

जिस वातावरण में वे बाल्यकाल में पले, उसकी स्मृतियॉ रह-रहकर उनके अंतःकरण में ग्रामीण जीवन के विकास के लिए कुछ-न-कुछ करने को प्रेरित करती रहती है। सरकारी और गैरसरकारी कार्य करते हुए उनके हृदय में ग्रामीण भाईयों के लिए कुछ कर जाने की लालसा एवं प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को सामने रखने की अकांक्षा उछा ले लेती रहती है। इसी कारण नालंदा,वैशाली और राजगृह जैसे छोटे-छोटे गॉवों में इन्होंने भगवान बुध्द और महावीर को साक्षात दर्शन कराने के लिए बडे उद्योग किए। वहॉ शोधपीठ की स्थापना कराई। उनके मृतक अतीत वैभव को जीता -जागता खडा करके दिखा दिया। ग्रामीणों की ऑखें विस्मय-विस्फारित होकर उस सरकारी अफसर को देखती रही कि इसने किचड में कैसे रंग-बिरंगे कमल खिला दिए।'[1] प्रसिध्द हिंदी नाटय समीक्षक एवं नाटय अभ्यासक दशरथ ओझा जी का यह मंतव्य जगदीशचंद्र माथुर जी के सर्वांगीण व्यक्तित्व तथा उनकी क्रियाशीलता का भलि-भॉति परिचय देता है। सरकारी अफसर रहे माथुर जी के व्यक्तित्व पर जींदगीभर अफसरियत का जामा चढने के बजाय लोकजीवन और लोक-संस्कृति के प्रति अपने मध्यम वर्गीय अथाह प्रेम को कायम जीवित रखा। अपने बारे में स्वंय उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि 'सौन्दर्य मेरी साधना है,किन्तु पुरुषार्थ मेरी सौन्दर्य-साधना से भी परे लोकोत्तर सत्य है।'[2] यही सत्य उनके व्यक्तित्व में बार-बार उद्घाटित होता हुआ दिखाई देता है। 16 जुलाई 1917 को उत्तरप्रदेश

E- ISSN 2582-5429
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
April-June 2022 Volume 3 Issue IV (B) SJIF Impact- 5.64

के अंतर्गत आनेवाले खुर्जा के पास एक छोटे से गॉव में जन्मे माथुर जी का बाल्यकाल एवं प्रारंभिक शिक्षा वही पर हुई थी । उनकी विश्वविद्यालयीन शिक्षा प्रयाग विश्वविद्यालय में सम्पन्न हुई थी। इसी विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त करके सन 1941 से अपने इंडियन सिविल सर्विस का आरंभ किया था। बिहार में शिक्षा सचिव,आकाशवाणी के महानिदेशक,कृषि मंत्रालय के अतिरीक्त सचिव,हिंदी सलाहकार जैसे अलग-अलग क्षेत्रों में उन्होने सरकारी अफसर के रुप में कार्य करते हुए अपने क्रियाशील व्यक्तित्व की पहचान कराई थी। सरकारी कामकाजी व्यस्तता में भी प्रकृति के साथ,प्रकृति के सहचर्य में शहरी जीवन की विकृतियों से दूर एक स्वच्छंद,**निरावरण** कलुषहीन जीवन के प्रति उनके मन में एक गहरी आस लगी रहती थी। यही आस उनके द्वारा रचित एकांकियों,ललित निबंधों,फुटकर रचनाओं के समान 'कोणार्क','पहला राजा', 'शारदीया'और 'दशरथनंदन' जैसी सरस नाटयकृतियों में प्रस्तुत हुई दिखाई देती है। प्राकृतिक दर्शन और लोक-जीवन के गंध की तलाश उनकी नाटयकृतियों में सर्वत्र मिलती है।उनका हर एक पात्र शहरी सभ्यता के प्रखर ताप से मुक्त होकर ग्रामीण वातावरण में अपने जीवन का उल्लास बिखेरते हुए दिखाई देता है। मानो उन पात्रों के माध्यम से माथुर जी ने लोकजीवन और संस्कृति के प्रति उनके मन में रहे अथाह प्रेम को स्वंय के अनुभवों तथा भोगे हुए यथार्थ से रेखांकित किया है। गोविंद चातक जी के मतानुसार 'सरकारी नौकरी में भी उन्होने अपने रचनात्मक संसार,भावलोक और अभिव्यक्ति उत्साह को अक्षुण्ण रखा। अधिकांश साहित्यकारों की सर्जन शक्ति **काल पी** जाती है,किन्तु जगदीशचंद्र माथुर जी का हृदय सुवर्ण निरंतर निखरता जा रहा है और जीवन के पुरुषार्थ को वे अपनी कृतियों में ढालते जा रहे हैं। एक और अलग पहलु से माथुर जी का व्यक्तित्व देखे तो वह आदर्शवादी लगता है। इस बात का प्रमाण 'बोलते क्षण' में यत्र-तत्र मिलते हैं । जिससे यह कहा जा सकता है कि माथुर जी के व्यक्तित्व में जो यथार्थवादी आदर्श स्थायी रुप में था वही आदर्श,वही अच्छाई उनके नाटयचरित्रों द्वारा उन्होने प्रस्तुत की हुई दिखाई देती है।

नाटय-सृष्टी का सामान्य परिचय

हिंदी नाटक के क्षेत्र में जगदीशचंद्र माथुर जी एक वरिष्ठ एवं प्रभावात्मक नाटककार के रुप में ख्याति प्राप्त रचनाकार रह चुके हैं । 'कोणार्क','शारदीया','पहला राजा' और 'दशरथनंदन'यह चार नाटयकृतियॉ उनके द्वारा हिंदी नाटय -सृष्टी को प्राप्त हुई अनमोल कृतियॉ है। इनमें से उनकी पहली नाटयकृति 'कोणार्क' सन 1951 में प्रकाशीत हुई थी। अभ्यासकों के अनुसार यही नाटक हिंदी में अधुनिक नाटकों का प्रारम्भ करनेवाला पहला नाटक है। इसमें माथुर जी ने ग्रामीण और नगरीय दोनों प्रकार के जीवन का सफलता से चित्रण किया है। नवीन प्रयोग की दृष्टी से देखे तो 'कोणार्क' नाटक की निर्मिती में माथुरजी ने शिल्प की अपेक्षा कथ्य को अधिक महत्व दिया हुआ दिखाई देता है। यह नया प्रयोग उनके द्वारा निर्मित अन्य नाटयकृतियों में भी किया हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि पूर्व कालीन प्रसाद युग के बाद हिंदी नाटय साहित्य के विकास क्रम में माथुर जी की नये-नये प्रयोगों द्वारा निर्मित नाटय-सृष्टी की एक सुनिश्चित भूमिका रही है।उनकी इसी प्रयोगात्मक भूमिका को समकालीन सभी आलोचकों ने स्वीकारा हुआ दिखाई देता है। उनके अनुसार माथुर जी के नाटक 'वास्तव में परंपरा और प्रयोग के बीच की कडी है। उनमें सामयिक बोध के साथ-साथ ऐतिहासिक चिन्तन है। वे न तो घोर यथार्थवादी है और न कोरे रसवादी। इतिहास और पुराण में उन्होंने प्रतीक ढूंढे हैं,मनोविज्ञान ढूंढा है और सामयिक बोध के आश्रय से अपने कथ्य को शक्ति प्रदान की है।'[4] इस दृष्टी से देखे तो 'कोणार्क' यह नाटयकृति केवल माथुर जी की पहली नाटयकृति नहीं है जो वह हिंदी साहित्य के विकासक्रम में पहली नाटयकृति प्रमाणित होती है क्योंकि उसमें इतिहास और पुराण की घटनाएँ पात्र और वातावरण के साथ-साथ दूसरी ओर सामयिक विसंगतियों का भी चित्रण किया हुआ दिखाई देता है। एक तरह से देखा जाए तो यह नाटक यथार्थवादी नाटय -लेखन परंपरा का पहला ऐतिहासिक नाटक है जिसमें एक बीते हुए युग के संदर्भ में समकालीन जिवन्त मनोभावों का अन्वेषन किया गया है। कथ्य की दृष्टी से देखे तो कोणार्क के प्रसिध्द सुर्य मंदीर को उत्कल राज्य के प्रमुख शिल्पी आचार्य विशु ने बना दिया है, केवल शिखर बनना शेष है-इस स्थिति से नाटक की कथा का आरंभ होता है। इसके प्रथम अंक में युवा शिल्पी धर्मपद के प्रयत्न से मंदिर के शिखर का निर्माण,राजा नरसिंहदेव के महामात्य राजराज चालुक्य द्वारा शिल्पी कारागीरों पर भयंकर अत्याचार,राजा के विरुध्द महामात्य द्वारा षडयंत्र रचना है। इसके द्वितीय अंक में महामात्य द्वारा आक्रमण,कोणार्क मंदिर दुर्ग बन जाना,युवा शिल्पि धर्मपद के नेतृत्व में शिल्पियों का महामात्य के साथ युध्द की घोषणा है। तो तृतीय अंक में विशु और घर्मपद पिता-पुत्र होने का संकेत,शिल्पियोंका बलिदान, धर्मपद द्वारा राजा को सुरक्षित भेजना तथा अंतिमतः प्रमुख शिल्पि विशु द्वारा चुम्बक तोडकर मंदिर गिराना आदि घटनाओं का क्रम पूरा होना है। इस नाटक में विशु और धर्मपद इन दो पुरुष पात्रों के माध्यम से

E- ISSN 2582-5429
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
April-June 2022 Volume 3 Issue IV (B) SJIF Impact- 5.64

माथुरजी ने दो युगों का चित्रण किया है। साथ ही साथ इन चरित्रों में माथुर जी ने भावना का भी तीव्र आत्म मंथन की अनेक स्थितियों का भी अत्यंत सुन्दरता से प्रदर्शन किया हुआ दिखाई देता है। स्वयं माथुर जी के अनुसार 'कोणार्क' नाटक में उन्होंने लिखा है- ''सौन्दर्य-सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जानेवाले कलाकार के युग-युग से मौन पुरुष को वाणी देने का सफल प्रयास किया है।'[5] यही वाणी कभी-कभी विशु के तो कई बार धर्मपद के माध्यम से उन्होंने प्रस्तुत की है। इनमें से असल में सहनशील विशु और विद्रोही धर्मपद दो अलग-अलग युगों का प्रतिनिधित्व करते हुए दिखाई देते हैं। अर्थात इनमें से एक प्राचीन युग का तो दूसरा अधुनिक युग का प्रतिनिधि है। एक ओर इस में नई और पुरानी पीढी का संघर्ष है तो दूसरी ओर राजसत्ता और जनसत्ता के बीच का संघर्ष पूरे नाटक को समकालीन सामाजिकता से जोडता हुआ दिखाई देता है। इस दृष्टी से देखे तो नाटय समीक्षक जयदेव तनेजा जी का इस नाटक के सन्दर्भ में दिया हुआ मन्तव्य समीचीन लगता है। उनके अनुसार इस नाटक में ''विशु, मुकुन्द कलाकार के उस चेतना के प्रतीक है, जो जीवन के संघर्ष से सर्वथा परे कला की एकांत साधना के पक्षपाती है। जबकि धर्मपद जीवन के आदि और उत्कर्ष में संघर्ष को चित्रित करने का अभिलाषी है। उसकी वाणी में आज का युग बोल रहा है। शताब्दियों से पीडित, उपेक्षित, मूक जनता की वेदना मुखरित हो उठी है। उसमें साम्राज्यशाही के विरुध्द जनता की महान शक्ति को उभारा गया है।'[6] यद्यपि उस नाटक की कथावस्तु ऐतिहासिक है किंतु माथुर जी ने उसमें इतिहास का सहारा अल्प मात्रा में लिया है,साथ ही साथ उडीसा में प्रचलित एक किवदन्ती का आधार भी अंशतः ही ग्रहण किया है क्योंकि उस नाटक का उद्देश नूतन युगबोध का केवल संकेत देना ही नहीं है तो सामयिक समस्याओं के साथ निडरता से संघर्ष करते हुए विजय हासिल करना है।

''शारदीया''माथुर जी की दूसरी महत्वपूर्ण नाटय रचना है। यह नाटयकृति भी 'कोणार्क' के समान ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। उसमें भी इतिहास का लेखा-जोखा नहीं है बल्कि उसमें भी माथुर जी ने ऐतिहासीक घटना केवल आधारभूमि के रुप में प्रयोगित की हुई दिखाई देती है। नाटक के प्राक्कथन में स्वयं माथुर जी ने इस बात पर प्रकाश डाला है। उनके अनुसार नाटक लिखने की प्रेरणा उन्हें नागपूर संग्रहालय में रखी,ग्वालियर के एक तहखाने में कैद एक बंदी द्वारा बुनी पंचतोलिया साडी से मिली है। उनका कहना है कि ''मन और तन को अंधेरे और घुटन के बन्धन में जकडनेवाले उस कारागार में इस कलाकार बंदी को किस अजस्र सौन्दर्य से प्रेरणा के विरामहीन घूँट मिले ? इस प्रश्न ने मेरी कल्पना को उत्तेजित किया और तभी नरसिंहराव और उसकी प्रेयसी बायजाबाई की काल्पनिक मूर्तियॉ सजीव हो गई।'[7] यही पर माथुर जी आगे नाटक की ऐतिहासिकता को नकारते हुए अत्यंत स्पष्टता से लिखते है कि ''उस तहखाने में बंद सौन्दर्य के निर्माता बंदी की काल्पनिक मूर्ति के आगे मुझे ऐतिहासिक तथ्य की खोज निरर्थक जान पडी।'[8] इससे यह भलि-भॉति स्पष्ट होता है कि इस नाटक में भी माथुर जी ने 'कोणार्क' के समान ऐतिहासिक संदर्भ को केवल आधारभूमि के रुप में ही प्रयोगित किया है। वैसे तो यह संपूर्ण नाटक दो प्रेमी हृदयों की प्रेम कहानी मात्र है, जिसके बीच मे ऐतिहासिक तथ्य उभरते हैं। कथात्मक दृष्टी से देखे तो नाटक शुरु होने से पहले ही अनेक घटनाएँ घटी हुई दिखाई देती है। जैसे - शारदोत्सव सम्पन्न होना, अनिद्य सुन्दरी बायजाबाई का सौंदर्य दौलतराव सिंदीया के हृदय में कॉटे सा गढ जाना,हैदराबाद के निजाम के साथ युध्द,खर्दा के ऐतिहासिक युध्द की सन्धि सम्पन्न होना और उस सन्धि की शर्ते लागू करना आदि। इसके बावजूद कथानक की दृष्टी से देखे तो नाटक का प्रथम अंक बायजाबाई और नरसिंहराव के प्रेममयी व्यक्तित्व से जुडा है। दोनों का स्वच्छंद प्रेम शरद की पूर्णिमा के समान रुपायित हुआ है। जैसे -''चाहे मैं तुम्हारे निकट होता हूँ, चाहे तुमसे दूर, शरद की पूर्णिमा की तरह तुम मेरे मानस में छायी रहती हो। निर्मल,शितल..... मन के कोने-कोने को भासमान करती रहती हो। गहरे अंधकार में मैने मुस्काती चॉदनी का अनुभव किया है। बायजाबाई, तुम्ही तो मेरी चॉदनी हो, मेरी शारदीया।'[9] प्रणयानुभूति की यह भवोत्कटता सम्पूर्ण कथानक में प्रारम्भ से अंत तक अनेक बार साकार हुई दिखाई देती है। द्वितीय अंक में षडयंत्रनुसार नरसिंहराव कारागृह में बंदी होकर अपनी प्रेमिका बायजाबाई के लिए तडपता रहता है। उसी कालकोठरी में वह अपनी उँगली में छेद करके पंचतोला साडी बुनता है। जिसे वह शरद पूर्णिमा के अवसर पर बायजाबाई को देना चाहता है। किंतु दूसरी ओर झूठ, फरेब, आत्म प्रवंचना और असुरी आकांक्षा को पूरी करने के लिए दौलतराव सिंधिया और सर्जेराव घाटगे अपने घिनौने राजनीतिक क्रिया-कलापों में सफल होकर उनकी प्रेमगाथा,करुणगाथा में परिवर्तित करते हैं। नाटक के अंत में हम देखते हैं कि युध्द में जाने के लिए उद्यत नरसिंहराव के मानस पर जब बायजा शरदपूर्णिमा की तरह छा जाती है तो वह अपनी ऊँगली काटकर रक्त से उसका टिका कर उसे उसके अदम्य शौर्य और बलिदान का विश्वास दिलाती है। इस नाटक के कथनक को मानवीय

E- ISSN 2582-5429
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
April-June 2022 Volume 3 Issue IV (B) SJIF Impact- 5.64

संवेदना से जोडनेवाली दो बातों पर प्रकाश डालते हुए गोविन्द चातक जी ने एक स्थान पर लिखा है कि ''इनमें एक है मुसलमानों के प्रति सहिष्णुता और दूसरी कलाकार की अहंता। सडी-गली मान्यताओं से एक भिन्न स्तर पर नरसिंहराव मानवतावादी दृष्टी के लिए जूझता है और नाटक में वह युग के एक बहुत बडे मानवतावादी मूल्य का --- बनता है। जो उसकी नियति का सबसे बडा व्यंग बनता है।'[10] नरसिंहराव का यही मानवतावादी दृष्टीकोण 'शारदीया' नाटयकृति को समसामयिक रचना का तथा नये प्रयोगधर्मिता का अहुदा प्रदान करता है।

'पहला राजा' माथुर जी की तीसरी और एक प्रौढ नाटयकृति है। इसका कथानक प्राचीन मिथक पर आधारित है। यह मिथक तब का हैजब व्यवस्था में हमारे यहाँ राजा तथा राजव्यवस्था जैसी संकल्पना ही नही थी। इस नाटक में जिस राजा का मिथक उतारा गया है,उसका नाम पृथु है। इसका उल्लेख ऋग्वेद और अथर्ववेद में एक दयावान राजा तथा शतपथ ब्राम्हण में पहला राजा के रुप में हुआ है। इसी मिथक को अपनाकर माथुर जी ने अपने इस नाटक के कथानक का ताना-बाना बुना है। तीन अंकों में विभाजित इस नाटक का कथानक प्रारम्भ से अंत तक ब्राम्हण-क्षत्रिय, आर्य-अनार्य, देव-असुर के संघर्ष द्वारा आधुनिक जीवन दृष्टी तथा मानवीय आस्था को व्यक्त करता है। इसका संपूर्ण कथानक वेद, पुराण और महाभारत के सूत्रों में निम्नलिखित प्रसंगों को बुनता हुआ साकार होता है। जैसे - वेन के शव का मंथन और उस मंथन से भुजापुत्र पृथु (क्षत्रिय) और जंघापुत्र कवष (शुद्र) की उत्पत्ति, पृथु द्वारा राजपद प्राप्त करना और कवष द्वारा निषादों का नेतृत्व करना, दस्युओं का आक्रमण और सरस्वती नदी की धारा सुख जाना, जीवन रस खत्म होकर भूख और अकाल की स्थिति और अंत में कवष से मिलकर राजा बनाए गए पृथु द्वारा पृथ्वी का गौ-रुप में दोहन करना। इन सभी प्रसंगों के चित्रण में मिथक और इतिहास के साथ-साथ माथुर जी की कल्पना दृष्टी संपूर्ण कथानक को आधुनिक संदर्भ तथा विश्वसनीयता प्रदान करती हुई दिखाई देती है। माथुर जी ने स्वयं इसकी भूमिका में इस बात पर प्रकाश डाला है। इनका कहना है कि ''यह नाटक न पौराणिक है, न ऐतिहासिक, न यथार्थवादी। यह तो एक 'मॉडर्न एलिगोरी'- आधुनिक अन्योक्ति- का मंचीय रुप है।'[11] समीक्षकों के अनुसार इस नाटक का ''आधुनिक अन्योक्ति'' होना ही इसे समकालीन राजनीतिक नाटक बना देता है। गोविंद चातक जी के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस देश के पहले प्रधानमंत्री बने पंडीत जवाहरलाल नेहरु और प्रस्तुत नाटक में चित्रित पहला राजा पृथु का व्यक्तित्व एक ही है। क्योंकि ''पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश के निर्माण में नेहरु का योग भी राजा पृथु जैसा ही रहा है। पृथु ने धरती के दोहन के लिए प्रथम प्रयास किया, नेहरु की भूमिका भी बुनियादी, नियामक और निर्णायक ही रही। पृथु की तरह नेहरु ने भी भारत की सांस्कृतिक एकता और जन-शक्ति के स्वप्न देखे। नेहरु को अपने शासन काल में अपने प्रशंसकों, मंत्रिमंडल के सदस्यों तथा अधिकार-भोगी वर्ग के हाथों जिन बाधाओं को भोगना पडा, उनको नाटककार ने पृथु के संदर्भ में मुनियों और सूत, मगध के माध्यम से उभरा है।'[12] गोविंद चातक जी का यह मन्तव्य निश्चित ही इस नाटक को नेहरु युगीन राजनीतिक स्थिति का परिचय देनेवाला एक सशक्त नाटक के रुप में प्रमाणित करता है। इसके अतिरिक्त मेरी दृष्टी से माथुर जी ने इसमें पौराणिक आवरण में आधुनिक मनुष्य की व्यथा और संघर्ष प्रस्तुत करते हुए जीवन की व्यर्थता की अनुभूति से पीडित फिर भी जीवन को अर्थ देने के प्रयास में रत मानव का चित्र ही प्रस्तुत किया है। मानव का यही प्रयासरत चित्र 'पहला राजा' नाटक को विचारशील एवं प्रौढ कलाकृति बना देता है।

समीक्षात्मक दृष्टि से देखे तो 'कोणार्क', 'शारदीया' और पहला राजा यह तीनों नाटयकृतियॉ जगदीशचंद्र माथुर जी को हिंदी नाटय क्षेत्र में एक सशक्त नाटककार होने की पहचान देते हैं। उनकी एक और नाटयकृति 'दशरथनंदन' मूलतः एक लघु नाटक है तथा माथुर जी ने उसकी रचना काव्यनाटक की शैली में की है। यही कारण है कि अधिकतर समीक्षक इसकी गिनती नाटय-सृष्टी में नहीं करते हैं वैसे तो माथुर जी की पहचान उनके द्वारा प्रस्तुत उपरलिखित तीनों नाटयरचनाएँ रही है। जिनकी आधरभूमि पुराण या इतिहास से ग्रहण की हुई दिखाई देती है। मगर जयशंकर प्रसाद जी की तरह माथुर जी के नाटकों में इतिहास हावी होने के बजाय उन्होंने जानबूझकर सामयिक विसंगतियों को केंद्र में रखकर अधिक चर्चा की है। एक तरह से उन्होंने अपने यहाँ प्रचलित रहे पौराणिक तथा ऐतिहासिक मिथकों का नाटयकृतियों की कथावस्तु की पृष्ठभूमि के लिए केवल उपयोग मात्र किया है। क्योंकि इन्हीं मिथकों के माध्यम से उन्होंने अपनी आधुनिक बात को, अपने नए सोच विचार को, नए मूल्यो कों, बदलते स्थितियों से पाठकों को, दर्शकों को रुबरु किया हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि माथुर जी ने अपने प्रत्येक नाटय-रचना की भूमिका में इस बात पर भलि-भॉति चर्चा की हुई दिखाई देती है।

E- ISSN 2582-5429
Akshara Multidisciplinary Research Journal
Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
April-June 2022 Volume 3 Issue IV (B) SJIF Impact- 5.64

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जाता है कि नाटककार के रुप में जगदीशचंद्र माथुरजी एक सफल प्रयोगधर्मी नाटककार रहे हैं क्योंकि उन्होंने अपने सभी नाट्यकृतियों के माध्यम से हिंदी नाटय और रंग-सृष्टी में, कथा चयन और चरित्र चयन में, रंगमंचीय प्रयोग किए हुए दिखाई देते हैं। हमारी दृष्टि से माथुर जी द्वारा किए गए यह सारे प्रयोग अधुनिक नाटय-सृष्टी की दृष्टि से केवल सफल ही नही हुए तो यह सभी प्रयोग परवर्ती नाटय-रचनाकारों के लिए एक सशक्त माईल-स्टोन बने हुए दिखाई देते हैं। अतः एक नाटककार की हैसियत से देखे तो जगदीशचंद्र माथुर जी ने हिंदी नाटक साहित्य क्षेत्र और हिंदी नाटक रंगमंच क्षेत्र को अपने नए-नए प्रयोगों द्वारा जो योगदान दिया है, वह योगदान अतुलनीय है, बेजोड है। जिससे नए नाटककारों को एक नई दिशा मिलती है।

संदर्भ:

1. सामयिक साहित्य - वर्ष-2 अंक- दशरथ ओझा पृष्ठ - 14
2. बोलते क्षण (ललित निबंध) जगदीशचंद्र माथुर पृष्ठ - 21
3. नाटककार जगदीशचंद्र माथुर गोविन्द चातक पृष्ठ – 15
4. नयी सदी: नये नाटक सम्पा. अर्जुन घरत पृष्ठ - 14
5. कोणार्क जगदीशचंद्र माथुर पृष्ठ - 09
6. समसामयिक हिंदी नाटकों में चरित्र-सृष्टी जयदेव तनेजा पृष्ठ - 94
7. शरदीया जगदीशचंद्र माथुर पृष्ठ -05
8. -- -- -- -- पृष्ठ - 17
9. -- -- -- -- पृष्ठ - 28
10. नाटककार जगदीशचंद्र माथुर गोविन्द चातक पृष्ठ - 50
11. पहला राजा जगदीशचंद्र माथुर पृष्ठ - भूमिका
12. नाटककार जगदीशचंद्र माथुर गोविन्द चातक पृष्ठ - 70